चितरंजन भारती

अथ श्री दुर्गा कथा

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को माता दुर्गा की आराधना के लिए कलश स्थापना की जाती है. जैसा कि हम जानते हैं कि यहाँ कलश को माता दुर्गा के प्रतीक रूप में पूजा की जाती है. इसी प्रतिपदा के दिन श्रीराम सेना द्वारा लंका पर आक्रमण किया गया था. वह प्रतिपदा के दिन ही कलश स्थापना कर बाकायदे ब्रम्हमुहुर्त में पूजा-अर्चना कर युद्धभूमि जाया करते थे. दशमी के दिन रावण-वध हुआ था. इसी प्रतीक को लेकर लोग कलश-स्थापना कर पूरे विधि-विधान से पूजा-पाठ करते हैं. देवी दुर्गा ने प्रतिपदा से नवमी तक अलग-अलग रूपों में महिषासुर और उसके सेनापतियों का वध किया था. इसलिए नौ दिनों तक उनके अलग-अलग रूपों की पूजा की जाती है।

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रम्हचारिणी.
तृतीयं चंद्रघंटेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्.
पंचमं स्कंदमातेति षष्ठं कात्यायनीति च.
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्.
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः.

-(दुर्गा सप्तशती)

दशमी को बाकायदे रावण-दहन होता है. हांलाकि यह जानकारी नहीं कि रावण के पुतले के दहन की परंपरा का आरंभ कब हुआ. जो भी हो, इस दशहरे के मेले की धूम हर गाँव-शहर में होती है. तुलसीदास ने जब हिन्दी में रामचरित मानस लिखा, तो यह ब्राम्हणों के हाथों से निकलकर जनता तक आ गई. संत तुलसी स्वयं मंदिरों-आश्रमों में रहते और भिक्षाटन कर अपना काम चलाते थे. उनके पहले तक संस्कृत में लिखी रामायण पर ब्राम्हणों का वर्चस्व था. वह जो भाष्य कर देते, अनपढ़ प्रजा को उसे मानना ही था. मगर तुलसीदास ने इसे सर्वसुलभ कर दिया. यहाँ एक रोचक तथ्य जानना जरूरी है. वह यह कि तुलसीदास मुगल सम्राट अकबर के समकालीन थे.साथ ही यह वह समय भी था, जब यूरोप में शेक्सपीयर अपने नाटकों के साथ लोकप्रिय हो रहे थे. यहाँ तुलसी दास ने एक काम और किया. वह समय नाटकों का था. तो उन्होंने अपने रामचरितमानस के आधार पर रामलीला का आयोजन कराना शुरू कर दिया, जिससे रामचरितमानस की चौपाइयाँ लोगों की जुबान पर चढ़ गई तथा इसकी लोकप्रियता और बढ़ी. रामलीला की

परंपरा हिन्दी-पट्टी में अब भी है. यह अलग बात है कि यह कम होती जा रही है. लेकिन यहाँ इतिहास के कुछ तिथियों पर नजर रखनी जरूरी है.

बंगाल 1757 में ही ब्रिटिशों के हाथ लग गया था. 1764 में बक्सर के युद्ध के बाद तो खैर उनका बंगाल में मुगल सम्राट के फरमान के अनुसार अपना शासन ही हो गया. लेकिन बगल में अवध और आगरा में मुस्लिम नवाबों का शासन था. यहाँ यह रामलीला का आयोजन होता रहा, जिसे वहाँ के नवाब प्रोत्साहित करते थे. 1857 के स्वाधीनता संग्राम के बाद जब मुगल साम्राज्य का सही मायने में पतन हो गया, तभी अवध और आगरा ब्रिटिश राज्य में मिले, जिसका नया नामकरण यू0पी0 (युनाइटेड प्रॉविन्सेज ऑफ अवध एंड आगरा) किया गया. स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी यही यू0पी0 (उत्तर प्रदेश) नाम रह गया. चूँकि बंगाल मातृपूजक देश रहा, सो वहाँ प्रतिमाओं की भी स्थापना की जाती है. इन प्रतिमाओं में माता दुर्गा के महिषमर्दिनी मुद्रा के साथ देवी सरस्वती, देवी लक्ष्मी तथा देवता गणेश तथा कार्तिकेय की भी पूजा की जाती है. बंगाली लोकमानस के अनुसार माता दुर्गा पार्वती का ही एक रूप हैं. तथा सरस्वती, लक्ष्मी, गणेश, कार्तिकेय उनके पुत्र-पुत्रियाँ हैं. चूँकि धरती उनका मायका है, तो वह हर वर्ष अपने परिवार के साथ अपने मायके आती हैं. और तब हम उनकी पूजा-आराधना करते हैं, ताकि हम धन-धान्य से भरे-पूरे रहें. उस समय के बंगाल में तब बिहार, उड़ीसा तथा बांग्लादेश शामिल था. असम चूँकि पड़ोसी प्रांत था और शक्तिपूजक भी, इसलिए वहाँ पर भी दुर्गापूजा वृहत् पैमाने पर होने लगे. इन इलाकों में बाकायदे पंडाल बनाकर देवी दुर्गा की स्थापना की जाती है.

चूँकि दुर्गापूजा पूरे विधि-विधान से होते हैं. इसमें खर्च भी बहुत होता है. इसलिए आमतौर पर इसका आयोजन जमींदार-वर्ग ही करता था, जिसमें वहाँ की प्रजा भी भाग लेती थी. 1757 में पलासी के युद्ध के बाद बंगाल में मुस्लिम राज का पतन तथा ब्रिटिश राज्य का प्रादुर्भाव हुआ. कलकत्ता के एक गाँव के जमींदार ने तब ऐसे ही एक पंडाल में दुर्गापूजा का आयोजन कर क्लाइव को आमंत्रित किया था. अब इसाई मूल के क्लाइव को दुर्गापूजा में दिलचस्पी हो न हो, इसलिए पंडाल के ठीक विपरीत दिशा में एक और मंच सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए बनाया गया, जहाँ स्थानीय कलाकारों के द्वारा नृत्य-गीत-संगीत की प्रस्तुति दी गयी. बांग्ला पंडालों में हम ऐसे ही आयोजन देखने के आदी हो चुके हैं. ध्यान रहे, हमारा भारतीय समाज मूलतः कृषिप्रधान है. वर्षाऋतु के बाद शरद ऋतु का आगमन हो जाता है. खेतों में हरे-भरे धान लगभग तैयार होते हैं. फूलों तथा फल-मूलों की भी भरमार रहती है. लेकिन हिन्दी पट्टी के अनुसार बंगाली लोकमानस की कथा को नहीं लिया जाता. हाँलाकि तनिक हेर-फेर के साथ कथा वही है. यहाँ हमारे सामने "दुर्गा सप्तशती" है, जो सबसे बड़ा आधार-ग्रंथ है. इस आधार-ग्रंथ के अनुसार महिषासुर द्वारा देवासुर संग्राम के बाद इंद्र के स्वर्ग को विजित कर लिया गया. महिषासुर का अत्याचार बढ़ता ही गया, तो इसके निदान के लिए सभी देवता एकत्र हुए. इन सभी के तेज-पुंज एक साथ निकल कर एकाकार हुए, तो उसने देवी दुर्गा का आकार खड़ा कर दिया. इन महादेवी को सभी देवताओं ने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र दिये.

महिषासुर के पास विशाल, अविजित सेना थी. सेना तो दुर्गा के पास भी थी. लेकिन उनको नियंत्रित करने के लिए एक सशक्त सेनापति की जरूरत थी. अब हारा हुआ इंद्र सेनापति क्या बने! सो दुर्गा ने अपनी इस सेना के लिए युवा कार्तिकेय का सेनापति के रूप में चयन किया. अब एक शुभ कार्य के लिए निकल रहे हैं, तो इसके लिए गणेश से बढ़कर और कौन हो सकता था. युद्ध के लिए बुद्धि और विवेक भी तो जरूरी है. वैसे भी गणेश गणाधीश अथवा गणपति ठहरे. वह ऋद्धि और सिद्धियों के भी अधिपति ठहरे. लोकमानस में उनकी दिव्यता है, तो दुर्गा ने उन्हें भी अपने साथ कर लिया.

युद्ध एक सुविचारित प्रक्रिया है. इसके लिए योजनाबद्ध ढंग से काम करना होता है. इसी को तो कहते हैं- रणनीति. विद्या-बुद्धि और ज्ञान की देवी सरस्वती से बढ़कर और दूसरा कौन हो सकता था, जो देवी दुर्गा को मार्गदर्शन कर सकता हो. सो दुर्गा ने उन्हें भी साथ कर लिया. अब युद्ध-भूमि में जा रहे हैं, तो पता नहीं वहाँ क्या हाल हो. न जाने कितने दिन लग जायें युद्ध जीतने में. ऐसे में सेना के लिए रसद-पानी के पर्याप्त प्रबंधन की जरूरत है. हथियार भी तो कहीं जंगल में नहीं उगते. उसे भी तो तैयार करना है. एक शस्त्री से निःशस्त्री की हार सुनिश्चित है. सो दुर्गा खतरा नहीं मोल नहीं ले सकतीं. और इसलिए उन्हें इन सबके लिए धन की जरूरत है. सो उन्होंने लक्ष्मी की ओर देखा. फिर उनको भी अपने दल में शामिल कर लिया.

यही कारण है कि दुर्गापूजा में दुर्गा की प्रतिमा के साथ सरस्वती, लक्ष्मी तथा गणेश, कार्तिकेय की भी पूजा की जाती है.

अब दुर्गापूजा का आयोजन हजारों-लाखों में नहीं, करोड़ों में किये जाते हैं. सो देखा-देखी इसका आयोजन हर समिति करना ही चाहती है. चूँकि इसमें मनोरंजन तत्व जुड़ा है. उत्तम खान-पान, परिधान के साथ मेले की भव्यता! लगभग सभी संस्थानों में लंबी छुट्टियाँ हों, तो हर कोई इसका आनंद लेना चाहेगा ही. इसी बहाने हम अपने हित-रिश्तेदार से लेकर पड़ोसी-पट्टीदार तक से भी मिल आते हैं. और कुछ नहीं, तो मेले-ठेले में मुलाकात संभावित ही है. इसलिए दुर्गापूजा का आयोजन इतनी तेजी से विस्तार हुआ है. जबकि रामलीलाओं का आयोजन संकुचित हुआ है. जो भी हो, हमें आनंद लेने का पूरा अधिकार है. मगर साथ ही इसके सामूहिक, सामाजिक, आध्यात्मिक पक्ष को भी समझने की जरूरत है. देवी दुर्गा अपने साथ हमेशा संचालन (कार्तिकेय), सामूहिकता (गणेश), संपत्ति (लक्ष्मी) तथा शुचिता (सरस्वती) के प्रतीक को अपने साथ रखती हैं. इस दुर्गा-पूजा का यही संदेश है.

ऊँ जयंती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी.
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तुते.